नाटक

सारा का सारा
यह संसार
केवल है
एक विशाल नाटक,
तू इसमें
भाँति-भाँति के भेष-धर
भाग ले,
तू इसे खेल
कोई चिन्ता नहीं
किन्तु
इस बात का भी ध्यान रख
इसमें तू
.....कभी
.....भूल कर भी.....
.....ना-अटक.....!

❑❑❑

सरगम स्वरातीत

सत् से जन्म ले
सत् में छद्म ले
हरदम होती हो
हरदम खोती हो,
कभी-कभी
अभाव के घाव पर
मरहम होती हो
स्वरातीत भाव पर
सरगम होती हो
केन्द्र को छोड़ कर
परिधि की ओर
दौड़ रही हो,
अनन्त को छोड़ कर
अवधि की ओर
मोड़ रही हो स्वयं को
ओ ! लहरों पर लहरें
रजत राजित गजरे
उत्तर दो !
इस ओर भेजकर
सरलिम तरलिम नजरें !

❑❑❑

बधिर बनूँ

निर्गुण से मिलने का
वार्ता-विचार विमर्श कर
तदनु चलने का
सगुण परमात्मा में
भावुक-भाव
उभर आया है,
और इधर
सघन नीलिमा ले
नील-गगन
नीचे की ओर
उतर आया है,
बीच में बाधक बनकर
साधक के साधना-पथ पर
तभी तो
कहीं नियति ने भेजी है
बाधा दूर करने
अरुक अथक
अविरल उठती आ रही हैं
लहरों पर लहरें,
इनकी ध्वनि
वे ही सुन सकते
जो वैषयिक क्षेत्र में
बने हैं पूर्ण बहरे !

❑❑❑

चख जरा

शाश्वत निधि का
भास्वत विधि का
..... धाम हो
राम, अभिराम हो
क्यों बना तू !
रावण सम
आठों याम
दीन-हीन
पाप-प्रवीण,
'है' उसे
बस लख जरा
बहुत दूर जाकर
चेतना में
लीन हो
सुधा-पीयूष
बस ! चख जरा।

❑❑❑

अवतार.....!

उतरा धरा पर
चिद्विलास
मानव बन
करनी कर
मानव-पन .....पा
मानव पनपा,
तू मान वही
मान प्रमाण का पात्र बना
पायी..... अन्तिम शान्ति
.....विश्रान्ति
फिर वहाँ से लौटा कहाँ ?
लौटना अशान्ति है
क्लान्ति, भटकन भ्रान्ति है
दुग्ध का विकास होता है
घृत का विलास होता है
घृत का लौटना किन्तु
दुग्ध के रूप में
सम्भव नहीं है ।

❑❑❑

छले छाँव में

काया की नाव में पले हैं
माया की छाँव में छले हैं
हम तो ..... निरे
अनजान ठहरे
इतने विचार
कहाँ हों गहरे
नहरों से पूछें
या लहरों से
कहाँ से आती
कहाँ जाती
..... ये लहरें ?
लहरों पर लहरें हैं
क्या ? लहरों में लहरें ।

❑❑❑

कैंची नहीं, सुई बन

चिर से बिछुड़े
दो सज्जन मिलते हैं
वृद्धावस्था में
परस्पर प्रेम वार्ता होती है
गले से गले मिलते हैं
गद्‌गद कण्ठ से,
एक ने पूछा एक से
तुमने क्या साधना की है
पर के लिए और अपने लिए ?
उत्तर मिलता है
द्वैत से अद्वैत की ओर बढ़ना हो
टूटे दो टुकड़ों को
एक रूप देना हो
तो सुनो
सुई होना सीखा है !
फिर दूसरे ने भी पूछा

इस दीर्घ जीवन में
ऐसी कौन सी साधना की तुमने
फलस्वरूप सब के स्नेह-भाजन हो,
उत्तर मिलता है
कि
कर्म के उदय में
जो कुछ होना सो होना है
सो धरा-सा
जरा होना सीखा है
दूसरों के सम्मुख
अपनी वेदना पर
भला ! रोना ना सीखा है,
हाँ !
दूसरा आ अपनी
व्यथा-कथा
सुनाता हो, रोता हो
यह मन भी व्यथित हो रोता है
और तत्काल
उसके आँसू
जरा धोना सीखा है।

❑❑❑

मौन मालती

ओ री मानवती
मृदुल मालती
क्यों न मानती,
मुड़-मुड़ कर.....
मोहक-मादक
मदिरा भर कर
प्याला ले कर
मेरे सम्मुख
आती है,
अपना ही गीत
गाती है
तू रागिनी है
.....स्वैर विहारिणी है
विरागिनी यह मति
बाध्य होकर
बाहर आती है
नाक फुलाती-सी
नासिका कहती यूँ
तभी मालती भी
गूढ़ तत्त्व का उद्‌घाटन करती है
मौन रूप से
कि
ज्ञेय तत्व भिन्न है
ज्ञान तत्त्व भिन्न है
ज्ञेय का अपना रूप
.....स्वरूप है,
क्रिया-कर्म है

ज्ञान का अपना भाव-स्वभाव है
गुण धर्म है
यद्यपि
ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध है हम दोनों में
ज्ञान जानता है
ज्ञेय जाना जाता है
किन्तु
ज्ञान जब तक
निज को तज कर
पर को अपना विषय बनाता है
निश्चित ही वह
सराग है सदोष तब तक
पर का आदर करता है
अपना अनादर,
तब, 'पर' पर आरोप आता है
कि
पर ने राग जमाया
ज्ञान में दाग लगाया
मैं तो अपने में थी
हूँ ..... रहूँगी चिर काल .....!
किन्तु ..... तू
ओ री नासिका !
तू ज्ञान की उपासिका कहाँ है ?
ज्ञान की उपहासिका है
अपनी सुरभि भूल जाती है
पर सुगन्धि पर फूल आती है
यह कौन-सी विडम्बना है
स्वयं को धोखा देना ।

❑❑❑

बादल धुले

धरती को प्यास लगी है
नीर की आस जगी है
मुख-पात्र खोला है
कृत-संकल्पिता है,
कि
दाता की प्रतीक्षा नहीं करना है
दाता की विशेष समीक्षा नही करना है
अपनी सीमा
अपना आँगन -
भूल कर भी नहीं लाँघना है,
क्योंकि
पात्र की दीनता
निरभिमान दाता में
मान का आविर्माण कराती है
पाप की पालड़ी भारी पड़ती है,
और !
स्वतन्त्र स्वाभिमान पात्र में
परतन्त्रता आती है
कर्त्तव्य की धरती
धीमी-धीमी नीचे खिसकती है,

तब !
लटकते दोनों अधर में
तभी तो
काले-काले
मेघ सघन ये
अर्जित पाप को
पुण्य में ढालने
जो सत्पात्र की गवेषणा में निरत हैं
पात्र के दर्शन पाकर
गद्‌गद हो
गड़गड़ाहट ध्वनि करते
सजल-लोचन
सावन की चौंसठ-धार
पात्र के पाद-प्रान्त में
प्रणिपात करते हैं
फिर तो
धरती ने बादल की कालिमा
धो डाली
अन्यथा
वर्षा के बाद
बादल-दल
विमल होते क्यों ?

❑❑❑

मुक्तिका

क्यों मुग्ध हुआ है
शुक्तिका पर
शुक्ति का खोल
एक बार तो झाँक ले
और ! आँक ले,
भीतर की मुक्तिका पर
सदा-सदा के लिए
अवश्य मुग्ध होगा !
कहाँ भटकता तू
बीहड़ जंगल में
बाहर नहीं
हे सन्त !
बसन्त बहार
भीतर मंगल में है।

❑❑

तोता क्यों रोता ?

प्रभाकर का प्रचण्ड रूप है
चिल-चिलाती धूप है
निदाघ का अवसर है
भरसक प्रयास चल रहा है
सरपट भागना चाह रहा है,
पर ! भाग नहीं पा रहा है भानु
सरक रहा है धीमे-धीमे
अस्ताचल की ओर,
और इधर
सर फट रहा है
फल भार ले झुका है
तपी धरा पर नग्न-पाद
आम्र-पादप खड़ा है
अपने प्रांगण में
दाता के रूप में
पात्र की प्रतीक्षा है
लो ! पुण्य का उदय आया है
कठिन परिश्रमी
हरदम उद्यमी
पदयात्री पथिक

पथ पर चलता-चलता
रुकता है निस्संकोच
सघन छाँव में
घाम-बचाव में
किन्तु यकायक
दाता का मन पलटता है
विकल्प-विकार से लिपटता है
कि
पात्र के मुख से
वचन तो मिलें
मीठे-मीठे
मिश्री मिले
प्रशंसा के रूप में,
महान दाता हो तुम
प्राण-प्रदाता हो तुम
और दान-शास्त्र की
जीवन गाथा हो तुम !
आदि-आदि,
अथवा
कम से कम खड़े-खड़े
दीन-हीन से
याचना तो करे
दोनों हाथ पसार

अपना माथ सँभार
और दाता को
मान-सम्मान से पुरस्कृत करे,
कुछ तो करें
दाता कुछ देता है
तो, प्रतिफल के रूप में
कुछ लेना भी चाहता है
लेन-देन का जोड़ा है ना !
लो ! संतों की वाणी भी
यही गाती है
'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'
अस्तु !
और !
मौन सघन होता जा रहा है
अपना-अपना कर्त्तव्य
गौण, नगन होता जा रहा है
इस स्थिति में
कौन ? रोक सकता है इस प्रश्न को,
कि
कौन ? विघन होता जा रहा है
दाता की मुख-मुद्रा
हृदय का अनुसरण कर रही है

कारण विदित ही है
दान क्रिया में दाता
प्राय: मान करता है
अहं का पोषक बनता है,
और पात्र यदि
दीनता की अभिव्यक्ति करता है
स्वाधीनता का शोषक बनता है
किन्तु !
मोक्ष-मार्ग में
यह अभिशाप सिद्ध होता है
इससे विरुद्ध चलना
वरदान सिद्ध होता है,
इसलिए
समुचित विधान यही है
दान से पूर्व मान-सम्मान हो
वह भी भरपेट हो
बाद में दान
भले ही अल्प ..... अधपेट हो
सहर्ष स्वीकार है
और यह भी ध्यान रहे
याचना, यातना की जनी है
कायरता की खनी है
इस पात्र को
कैसे छू सकती है वह,

और भाव-प्रणाली
ललाट-तल पर आ
तरल तरंगायित है
भ्रमित भंगायित है
जो कुछ है वितरण कर रही है,
और इसी बीच
अयाचक-वृत्ति का पालक पात्र
मौन मुद्रा से
समयोचित भावाभिव्यक्ति
सहज-भाव से करता है,
कि,
हे आर्य !
दान देना
दाता का कार्य है
प्रतिदिन अनिवार्य है
यथाशक्ति
तथाभक्ति
मान-सम्मान के साथ,
पाप को पुण्य में ढलना है ना !
और यह भी सत्य है
पात्र मान-सम्मान के बिना
दान स्वीकार नहीं करेगा,

यह वीरता का धनी है
सदा-सदा के लिए
इसमें धीरता आ ठनी है
लो ! और यह कैसा विस्मय !
फलों की भीड़ से घिरा
नीड़ में बैठा-बैठा
निस्संग तोता
इस मौन वार्ता को पीता है
जो मांसाहार से रीता .....
.....जीवन जीता है,
स्वैरविहारी है
फलाहारी है
अतिथि की ओर निहारता है अनिमेष !
मन ही मन विचारता है
अभूतपूर्व घटना है मेरे लिए
प्रभूत पुण्य मिलना है मेरे लिए
और सुरभि से निरा महकता
सुन्दरता से भरा चहकता
पक्व रसाल चुनता है
अतिथि के लिए
दान हेतु,
किन्तु

तत्काल क्या हुआ
सुनो तुम !
मनोविज्ञान में निष्णात जो है
अतिथि की ओर से
मौन भाषा की शुरुआत और होती है
कि
यह भी दान स्वीकार नहीं है इसे
यद्यपि इसमें
पूर्व की अपेक्षा
मान-सम्मान का पुट है
और भरपूर है,
किन्तु !
दाता दान को मजबूर है
पात्र को देखकर
और !
पर-पदार्थ को लेकर
पर पर-उपकार करना
दान का नाटक है
चोरी का दोष आता है
यदि अपनत्व का दान करते हो
श्रम का बलिदान करते हो
स्वीकार है,
अन्यथा यह सब वृथा है
तथा स्व-पर के लिए
सर्वथा व्यथा है।
दान की कथा सुनकर

मूक रह जाता तोता
भीतर ही भीतर
उसका मन व्यथित होता है
अकर्मण्य जीवन पर रोता है
तन भी मथित होता है उसका,
और !
सजल-लोचन कर
निजी आलोचन कर
प्रभु से प्रार्थना करता है
अगला जीवन इसका
श्रम-शील बने
शम-झील बने
और ! बहुत विलम्ब करना उचित नहीं
अतिथि लौट न जाये
खाली हाथ !
ऐसा सोचता हुआ
उसी पल एक
पका फल
अननुभूत भाव से
अपने आपको
भरा हुआ-सा
अभिभूत अनुभूत करता है
पूत-सफलीभूत बनाने
जीवन को दान-दूत बनाने

जिसमें नव-नवीन भाव
प्रसूत होता है
कर्त्तव्य के प्रति
प्रस्तुत करता है
अतिथि का रूप निरख कर
अतिथि का स्वरूप परख कर
जीवन को दिशा मिल गई,
चिर से तनी
और घनी निशा टल गई
दान की उपासना
.....जागृत हुई
मान की वासना
.....निराकृत हुई
राग, विराग से मिलने
.....आकुल है
पंक, पराग से मिलने
.....आतुर है,
और
बन्द अधर खुलते हैं
शब्द 'अधर' डुलते हैं
आगत का स्वागत हो
अभ्यागत आदृत हो
सेवा स्वीकृत हो

सेवक अनुगृहीत हो
हे स्वामिन् ! हे स्वामिन् ! हे स्वामिन् !
और दान कार्य सम्पादन हेतु
सहयोग के रूप में पवन को
आहूत करता है
वन-उपवन-विचरणधर्मा
तत्काल आता है पवन
फल से पूर्व-भूमिका विदित होती है उसे
कि
ये पिता हैं (वृक्ष की ओर इंगन)
इनका पित्त प्रकुपित है
तभी मुझ पर कुपित हैं
आँगन में अतिथि खड़े हैं
ये अपनी धुन पर अड़े हैं
स्वयं दान देते नहीं
देने देते नहीं,
मान प्रबल है इनका
ज्ञान समल है इनका
मेरे प्रति मोह है
पर के प्रति द्रोह है
क्या ? पूत को कपूत बनाना चाहते हैं ये
पूत-पवित्र नहीं,
और पवन को इंगित करता है पका फल
मैं बन्धन तोड़ना चाहता हूँ
इस कार्य में सहयोग अपेक्षित है
'समझदार को इशारा काफी है'

सूक्ति चरितार्थ हुई,
और पवन ने
एक हल्का-सा
झोंका दे दिया
प्रकारान्तर से
वृक्ष को धोखा दे दिया
रसाल फल
डाल से खिसक कर
शून्य में दोलायित हुआ
अर्पित होने, लालायित हुआ
चिर के लिए बन्धन / क्रन्दन
पलायित हुआ,
पुन: पवन को समझाता है
मुझे इधर-उधर नहीं गिराना
सीधा बस !
पात्र के पाणि-पात्र में गिराना
और एक झोका देने पर
डाल के गाल पर !
फल, कर में आ पात्र के
अर्पित होता है,
स्वप्न साकार होता है
और सत्कार्य में भाग लेकर
पवन भी बड़भागी बनता है
पाप-त्यागी बनता है
सज्जन समागम से
रागी विरागी बनता है

नीर, क्षीर में गिरता है
शीघ्र क्षीर बनता है,
और पथ पर
सहज चाल से पूर्ववत्
चल पड़ा वह अतिथि
उधर डाल के गाल पर
लटकता अधपका
फलों का दल
बोल पड़ा
कि
कल और आना जी !
इसका भी भविष्य उज्ज्वल हो
करुणा इस ओर भी लाना जी !
अतिथि की हल्की-सी मुस्कान
कुछ बोलती-सी !
यह भविष्य में जीता नहीं
अतीत का हाला पीता नहीं
यही इसकी गीता है
सरगम-संगीता है,
देखो ! क्या होता है
जिसके बीच में रात
उसकी क्या बात ?
और वह देखता रह जाता फलों का दल
सुदूर तक दिखती
अतिथि की पीठ
पुनरागमन की प्रतीक्षा में ..... !

❑❑❑

गीली आँखें

इसे निर्दयता कहना
अनुचित होगा
अपनी चरम-सीमा सूँघती हुई
निरीहता नितान्त है
निरभ्र-नभ में,
पूत-प्रतिमा सी पीठ
प्रतिफलित है
ध्रुव की ओर उठते चरण दिख रहे
किन्तु
सारी करुणा सिमट कर
आँखों में चली गई है,
वे आँखें कहाँ दिखतीं
और कहाँ देखतीं
मुड़ कर इसे
नीली आँखें !
और ईहा की सीमा पर
आकुल अकुलातीं
इसकी दोनों
पीली-पीली
हो आती
गीली आँखें ।

❑❑❑

सातत्य

मृदु मंजुलता
ललित लता पर
कल तक थी
मुकुलित कली
आज उषा में
खुली खिली है
और सुषमा
सुरभि लेकर !
कल रहेगी
काल-गाल में
कवलित होकर !
किन्तु सत् की
कमनीयता वह
सातत्य ले साथ
सब में ढली है
उसकी छवि
किसे मिली है ?

❑❑❑

हास्य के कण

वह कौन-सा मानस है
जिसके भीतर
कुछ अपूर्व घट रहा है
जिसका उद्‌घाटन
उठती हुई लहरों पर लहरें
करती जा रही हैं,
हर लहर पर
हास्य के कण
बिखरे हैं..... बिखरते जा रहे हैं
और यह भी मानस
जिसके नस-नस
जल रहे हैं
इसके भीतर
बड़वानल उबल रहा अभाव का,
तभी तो जीवन सत्त्व
राख बने,
काले काले बाल के मिष
बाहर आ उभरे हैं
जिन पर मोहित हैं
शाम सवेरे
ज़हरीली नज़रें

❑❑❑